ही पूर्ण ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप में हृदयंगम कर सकते हैं; दूसरों को यह बोध नहीं होता। अद्वैतवादी कहते हैं कि अन्तिम अवस्था में ये तीनों तत्त्व एकाकार हो जाते हैं, पर भक्तों को यह मान्य नहीं है। ज्ञान अथवा ज्ञान के विकास का अर्थ कृष्णभावना में अपने स्वरूप को जानना है। इस समय हम मोह से प्रेरित हैं; किन्तु जैसे ही अपनी सम्पूर्ण मति को श्रीकृष्ण के लीलामृत में निमग्न करके हम समझ जायेंगे कि श्रीकृष्ण सर्वत्र परिपूर्ण हैं, वैसे ही सच्चे पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि हो जायगी। भाव यह है कि भक्तियोग के पूर्ण बोध की जो प्रारम्भिक अवस्था है, वास्तव में उसी का नाम 'ज्ञान' है।

**प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।**
**विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।।२०।।**

**प्रकृतिम्**=प्रकृति को; **पुरुषम्**=जीवों को; **च**=भी; **एव**=निःसन्देह; **विद्धि**=जान; **अनादी**=अनादि; **उभौ अपि**=इन दोनों को ही; **विकारान् च**=विकारों को; **गुणान् च**=गुणों को भी; **एव**=अवश्यमेव; **विद्धि**=जान; **प्रकृतिसंभवान्**=प्रकृति से उत्पन्न हुआ।

### अनुवाद

हे अर्जुन! प्रकृति और जीव दोनों को ही अनादि जान; उनके विकारों और त्रिविध गुणों को प्रकृति से उत्पन्न हुआ जान।।२०।।

### तात्पर्य

इस ज्ञान के द्वारा क्षेत्र तथा जीव-क्षेत्रज्ञ और परमात्मा-क्षेत्रज्ञ को भी जाना जा सकता है। क्षेत्र, अर्थात् देह प्रकृति से निर्मित है और जीवात्मा इसमें बद्ध है। यही जीवात्मा अथवा 'पुरुष' देह की क्रियाओं को भोगता है। इस क्षेत्रज्ञ के अतिरिक्त एक अन्य क्षेत्रज्ञ भी है—परमात्मा। अवश्य ही, जीवात्मा और परमात्मा दोनों श्रीभगवान् के भिन्न-भिन्न प्रकाश हैं। जीव उनकी शक्ति का भिन्न-अंश है, जबकि परमात्मा उनका स्वांश है।

प्रकृति और जीव, दोनों ही अनादि, अर्थात् नित्य हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि सृष्टि से पूर्व भी वे दोनों थे। प्राकृत सृष्टि भगवत्-शक्ति का कार्य है। जीवों के लिए भी यही सत्य है; किन्तु वे पराशक्ति के अंश हैं। ये दोनों तत्त्व इस ब्रह्माण्ड की रचना से पूर्व विद्यमान थे। तब प्रकृति महाविष्णु में लीन थी। यथासमय महत्तत्त्व के माध्यम से उसका प्रकाश हुआ। इस प्रकार, जीव भी उन्हीं में हैं, पर मायाबद्ध होने के कारण वे भगवत्सेवा से विमुख हो रहे हैं। परिणामतः वैकुण्ठ-जगत् में उनका प्रवेश नहीं हो पाता। प्रकृति का संवरण होने पर इन जीवों को एक और अवसर दिया जाता है कि संसार में उचित कर्म करते हुए वे वैकुण्ठ-जगत् में जाने के योग्य बन जायें। इस प्राकृत सृष्टि का यही रहस्य है। मूल रूप में जीव श्रीभगवान् का अप्राकृत अंश है; परन्तु अपने विद्रोही स्वभाव के कारण वह मायाबद्ध हो गया है। यह जानना